दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

निर्णय घोषित: 02.07.2008

मू.वि.या. 5/2004

प्योर फार्मा लिमिटेड ...याचिकाकर्ता

- बनाम -

भारत संघ ...प्रत्यर्थी

<u>इस मामले में उपस्थित हुए अधिवक्ता:</u>

याचिकाकर्ता हेतु : श्री शिव खुराना

प्रत्यर्थी हेतु : सुश्री राजदीपा बेहुरा सह श्री नरेंद्र सिंह

कोरम:-

माननीय न्यायमूर्ति श्री बदर दुर्रेज़ अहमद

1. क्या स्थानीय समाचार पत्रों के रिपोटरों को निर्णय देखने कि अनुमति दी जानी चाहिए ? हाँ
2. रिपोर्टर को संदर्भित किया जाना है या नहीं ? हाँ
3. क्या निर्णय को डाइजेस्ट में रिपोर्ट किया जाना चाहिए या नहीं? हाँ

<u>न्या. बदर दुर्रेज़ अहमद</u>

1. याचिकाकर्ता ने न्यायमूर्ति सी.एल.चौधरी, इस न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश, के द्वारा उनकी क्षमता के भीतर एकमात्र मध्यस्थ के रूप में पारित दिनांक 22.09.2003 के अधिनिर्णय को अपास्त करने की मांग की है। यद्यपि, इस याचिका में विभिन्न आधारों को लिया गया है , विद्वान अधिवक्ता श्री शिव खुराना याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित हुए हैं, उन्होंने अधिनिर्णय को अपास्त करने के लिए तीन आधारों पर जोर दिया है ।

2. उनके द्वारा लिया गया पहला आधार यह है कि विद्वान मध्यस्थ ने **<u>ऑयल और नेचुरल गैस कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम सॉ पाइप्स लिमिटेड: *(2003) 5 एससीसी 705,*</u>** के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा रखा जो एक ऐसा निर्णय था जो तर्क के समापन होने कि तिथि के पूर्व तक पक्षों के लिए उपलब्ध नहीं था और विद्वान मध्यस्थ ने अधिनिर्णय को सुरक्षित कर दिया था। यह प्रतिवाद किया जाता है कि अधिनिर्णय, अन्य बातों के साथ-साथ, उच्चतम न्यायालय के उक्त निर्णय पर आधारित है, जिसे मई, 2003 में निर्णित किया गया था, जबकि तर्क को निष्कर्षित किया जा चुका था और पक्षों के लिखित निवेदनों को उस तिथि से बहुत पूर्व ही निवेदित कर दिया गया था। परिणामत: यह निवेदित किया जाता है कि पक्षों को उच्चतम न्यायालय के उक्त निर्णय के संबंध में अपने निवेदनो को रखने का अवसर नहीं मिला जिससे वर्तमान मामले और उच्चतम न्यायालय के समक्ष मौजूद मामले के बीच अंतर को सामने लाया जा सके। इसलिए, यह प्रतिवाद किया

गया कि चूंकि मध्यस्थ ने पक्षों को ऐसा अवसर नहीं दिया, इसलिए उक्त निर्णय पर आधारित अधिनिर्णय अपास्त करने योग्य है।

3. श्री खुराना द्वारा लिया गया दूसरा आधार यह है कि समय संविदा का मर्म नहीं होता और इसलिए, परिनिर्धारित क्षति को भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 55 (2) के तहत अवलंबित नहीं किया जा सकता जब तक कि क्षति के सटीक परिणाम को साबित नहीं कर दिया जाता है ।

4. श्री खुराना द्वारा लिया गया तीसरा और मुख्य आधार यह है कि संविदा के सामान्य शर्तों की धारा II के खंड 21.1 ने क्षतियों के वास्तविक पूर्व-अनुमान को प्रतिबिंबित नहीं क्या, परंतु यह एक ऐसी क्षति थी जो जुर्माने की प्रकृति की थी और इसलिए, कथित भंग के कारण हुई क्षति को साबित करने के लिए प्रत्यर्थी पर दबाव डाला गया था। इस आधार पर उनके प्रतिविरोधों के समर्थन में, श्री शिव खुराना ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया:-

1. ***फतेह चंद बनाम बालकिशन दास*** : ***ए.आई.आर. 1993 एस.सी.1405 .***
2. ***मौला बक्स बनाम भारत संघ: ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 1955***

3. ***<u>ऑयल और प्राकृतिक गैस कारपोरेशन लिमिटेड बनाम सॉ पाइप्स लिमिटेड</u>*** **:** ***ए.आई.आर. 2003 एस.सी. 2629***

4. ***<u>हरियाणा टेलीकॉम लिमिटेड बनाम भारत</u>*** **<u>संघ:</u> 2006** ***(2) मध्य. एल.आर. 293 (दिल्ली)***

5. प्रत्यर्थी (भारत संघ) की ओर से उपस्थित सुश्री राजदीपा बेहुरा ने याचिका का प्रतिरोध तथा अधिनिर्णय का समर्थन किया। उन्होंने श्री खुराना द्वारा उठाए गए पहले आधार के संदर्भ में निवेदन किया कि मध्यस्थ को हाल के निर्णयों पर विचार करने से प्रवारित नहीं जा सकता है। उन्होंने यह भी निवेदन किया कि भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 55 के प्रावधानों के आधार पर याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए आधार को विद्वान मध्यस्थ द्वारा उक्त अधिनिर्णय में पर्याप्त रूप से निपटाया गया था। श्री खुराना द्वारा उठाए गए तीसरे और मुख्य आधार के संबंध में, उन्होंने निवेदन किया कि यह सवाल कि क्या यह खंड परिनिर्धारित क्षति के लिए था या दंड के रूप में था, या शास्ति का तरीका अनिवार्य रूप से निर्माण का प्रश्न है या दूसरे शब्दों में, संविदा के खंड की व्याख्या का प्रश्न है। उन्होने निवेदन किया कि संविदा के खंडों के अर्थान्वयन निर्वचन के प्रश्न शुद्ध रूप से मध्यस्थ के अधिकार के अंतर्गत आते है और मध्यस्थ द्वारा किए गए अर्थान्वयन/निर्वचन के साथ हस्तक्षेप नहीं करता जब तक कि किसी प्रतिकूलता का संकेत नहीं दिया जाता है । उन्होंने यह भी निवेदन किया कि किसी खंड को परिनिर्धारित क्षति के रूप

में माने जाने के लिए, इसमें यह स्पष्ट रूप से उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि खंड में नामित राशि क्षति का वास्तविक पूर्व-अनुमान है संविदा के भंग होने के कारण हो सकता है । उन्होंने निवेदन किया कि संविदा की सामान्य शर्त की उक्त धारा II के खंड 21.1 में कोई अस्पष्टता नहीं थी जो पक्षों को नियंत्रित करती है और इसलिए, मध्यस्थ के इस निष्कर्ष में कोई दोष नहीं पाया जा सकता है कि पक्षों ने क्षति का पूर्व-अनुमान लगाया था और मुआवजे के रूप में राशि अनुचित नहीं थी। उन्होंने निवेदन किया कि अधिनिर्णय में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए।

6. यद्यपि, श्री खुराना ने ***मेसर्स डेल्टा फाउंडेशन एंड कंस्ट्रक्शन्स, कोच्चि और अन्य बनाम केरल स्टेट कंस्ट्रक्शन, कॉर्पोरेशन लिमिटेड, एर्नाकुलम*** : ***एआईआर 2003 केरल 201*** के मामले में केरल उच्च न्यायालय के खंड पीठ के निर्णय को संदर्भित किया है, जिसने यह विचार व्यक्त किया कि जब कोई न्यायालय ऐसे निर्णयों पर निर्भर करता है जिनका उल्लेख बार में नहीं किया गया था और उन निर्णयों को पक्षकार के अहित के लिए लागू करता है, तो यह समीक्षा के लिए पर्याप्त आधार होगा, मेरा विचार है कि ***ओ.एन.जी.सी.*** *(पूर्वोक्त)* में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर विचार करने के संबंध में श्री खुराना द्वारा उठाया गया पहला आधार असमर्थनीय है। सबसे पहले, यह समीक्षा की मांग करने वाली याचिका नहीं है, बल्कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के तहत एक अधिनिर्णय को अलग करने की

मांग करने वाली याचिका है। दूसरा, मध्यस्थ को ***ओ.एन.जी.सी.*** *(पूर्वोक्त)* के मामले में उच्चतम न्यायालय के हाल के निर्णय पर विचार करने का अधिकार था। तीसरा, उच्चतम न्यायालय के उक्त निर्णय ने, मेरे विचार में, केवल भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 73 और 74 को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों को दोहराया, जो पहले से ही ***फतेह चंद*** *(पूर्वोक्त)* और ***मौला बक्स*** *(पूर्वोक्त)* के मामले में तय किए जा चुके थे। इन कारणों से, श्री खुराना द्वारा उठाए गए चुनौती के पहले आधार को खारिज कर दिया गया है।

7. जहाँ तक दूसरे आधार का संबंध है, विद्वान मध्यस्थ ने विस्तार से चर्चा की है। याचिकाकर्ता/दावेदार के अभिवचनों को दर्ज किया गया । अधिनिर्णय में यह उल्लेख किया गया है कि प्रतिविरोध यह था कि प्रत्यर्थी परिनिर्धारित क्षति की वसूली नहीं कर सका यद्यपि समय संविदा का मर्म नहीं होता और यह की भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 55 के तहत कोई नोटिस जारी नहीं किया गया था और यह की प्रत्यर्थी यह साबित करने में विफल रहा था कि सामग्री की आपूर्ति में देरी के कारण उसे कोई क्षति हुई थी। विद्वान मध्यस्थ ने दिनांक 11.2.1995 पत्र का उल्लेख किया जिसमें याचिकाकर्ता ने फोलिक एसिड गोलियों की संविदात्मक डिलीवरी करने के लिए प्रत्यर्थी से समय बढ़ाने की मांग की थी। इस पत्र को सम्पूर्ण रूप से अधिनिर्णय में शामिल किया गया है। यह ध्यान देने योग्य विषय है कि याचिकाकर्ता के दिनांक 11.2.1995 के उक्त पत्र में निम्नलिखित कथन है:-

> "चूंकि संविदा में सामग्री की देर से प्राप्ति के लिए जुर्माना खंड के रूप में एक प्रावधान है, यानी प्रति सप्ताह @ 0.5%, विभाग को सामग्री को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"

फोलिक एसिड गोलियों की संविदात्मक राशि की डिलीवरी के लिए समय बढ़ाने का अनुरोध करने वाले उक्त पत्र के जवाब में, प्रत्यर्थी ने पहली और दूसरी किश्तों के संबंध में डिलीवरी की अवधि बढ़ाने के लिए दिनांक 17.2.1995 एक पत्र जारी किया था । पत्र में निम्नलिखित कथन भी शामिल था:-

> "कृपया ध्यान दें कि "संविदा की सामान्य शर्तों" की धारा-II के खंड 21.1 के अनुसार माल की साइट कीमतों (करों, शुल्कों, माल ढुलाई आदि के तत्वों सहित) पर मुफ्त डिलीवरी के 0.5% (आधा प्रतिशत) प्रतिशत के बराबर राशि जो आप डिलीवरी के लिए निर्धारित अवधि के भीतर देने में विफल रहे हैं, यानी संविदा में 31.12.1994 (1 किस्त) और 23.1.1995 (2 किस्त) तक, आपसे परिनिर्धारित क्षति के रूप में वसूल की जाएगी।"

पत्र में यह भी कहा गया:-

> "आपको यह ध्यान देना आवश्यक है कि वितरण अवधि में विस्तार के बावजूद (यदि आप इसे स्वीकार करते हैं) दुकानों की आपूर्ति के लिए इसके द्वारा बढ़ाया गया समय संविदा का सार माना जाएगा और विस्तारित समय तक दुकानों को आपूर्ति करने में आपकी विफलता खरीदार को संविदा की धारा-II की सामान्य शर्तों के खंड 22.1 (एसआईसी) के अनुसार कार्रवाई करने का अधिकार देगी।"

विद्वान मध्यस्थ ने उक्त पत्रों का अर्थ निकालने के बाद और यह तथ्य कि दोनों पत्रों में से उत्तरार्द्ध द्वारा दिए गए समय के विस्तार को याचिकाकर्ता द्वारा स्वीकार कर लिया गया था, इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस आधार पर याचिकाकर्ता का तर्क बिना किसी गुणागुण के था क्योंकि प्रत्यर्थी द्वारा

परिसमापन क्षति के भुगतान की शर्त पर वितरण अवधि विशेष रूप से बढ़ा दी गई थी। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि दिनांक 17.2.1995 के पत्र में स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है कि वितरण के विस्तार के बावजूद, समय संविदा का मर्म होगा। विद्वान मध्यस्थ के निष्कर्ष को गलत नहीं ठहराया जा सकता है और इसलिए, याचिकाकर्ता की ओर से उठाए गए दूसरे आधार को भी खारिज कर दिया जाता है।

8. श्री खुराना द्वारा उठाया गया तीसरा और मुख्य आधार धारा-II के खंड 21.1 "संविदा की सामान्य शर्तों" के संबंध में था। उक्त खंड नीचे दिया गया है:-

> "21.1 खंड 23 के अधीन, यदि आपूर्तिकर्ता संविदा में निर्दिष्ट समय अवधि (ओं) के भीतर किसी भी या सभी सामान को वितरित करने या सेवाओं का प्रदर्शन करने में विफल रहता है, तो खरीदार, संविदा के तहत अपने अन्य उपायों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, संविदा मूल्य से, वास्तविक वितरण या प्रदर्शन तक देरी के प्रत्येक सप्ताह के लिए विलंबित माल या अप्रचलित सेवाओं के वितरित मूल्य के 0.5% के बराबर राशि, विलंबित माल या सेवा संविदा मूल्य के अधिकतम 10% की कटौती तक, परिसमापन क्षति के रूप में कटौती करेगा। एक बार अधिकतम सीमा तक पहुँच जाने के बाद, खरीदार संविदा को समाप्त करने पर विचार कर सकता है।"

उपरोक्त खंड 21.1 में निर्दिष्ट खंड 23 बल आकस्मिक खंड है, जो वर्तमान मामले में विचार के लिए उत्पन्न नहीं होता है। खंड 21.1 को पढने से यह

स्पष्ट होता है कि यदि आपूर्तिकर्ता संविदा में निर्दिष्ट समय अवधि के भीतर माल को वितरित करने में विफल रहा, तो खरीदार संविदा के तहत अपने अन्य उपायों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, संविदा मूल्य से परिसमापन क्षति के रूप में कटौती करने का हकदार होगा, जो वास्तविक वितरण या प्रदर्शन तक देरी के प्रत्येक सप्ताह के लिए माल के वितरित मूल्य के 0.5% के बराबर राशि थी, जो देरी से माल या सेवा संविदा मूल्य के अधिकतम 10 प्रतिशत की कटौती तक थी। यह भी स्पष्ट है कि एक बार अधिकतम सीमा तक पहुँचने के बाद, खरीदार संविदा को समाप्त करने पर विचार कर सकता है। इस खंड को विद्वान मध्यस्थ द्वारा ऐसा समझा गया है जहां पक्षों ने एक स्पष्ट समझ तक पहुंचने के बाद क्षति का पूर्व-अनुमान लगाया है न कि यह दंड के रूप में खंड है। विद्वान मध्यस्थ ने पाया कि यह खंड दिनांक 11.2.1995 और 17.2.1995 के दो पत्रों के साथ मिलकर स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है कि याचिकाकर्ता/दावेदार संविदा में निर्धारित किए गए परिसमापन क्षति के अनुसार निश्चित क्षतिपूर्ति का भुगतान करने के लिए स्पष्ट रूप से सहमत थे। विद्वान मध्यस्थ ने पाया कि यह शर्त संविदा के उल्लंघन के कारण होने वाली संभावित हानि के पूर्व आकलन के आधार पर लगाई गई थी तथा यह पूर्व आकलन स्पष्ट समझ के बाद लगाया गया था। विद्वान मध्यस्थ ने पाया कि ऐसी परिस्थितियों में, इस निष्कर्ष पर पहुंचना पूरी तरह से अनुचित होगा कि जिस पक्ष ने संविदा को भंग किया है, वह मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं है। विद्वान मध्यस्थ ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि यह दिखाने

या स्थापित करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है कि उक्त खंड में पक्षों द्वारा विचार किया गया मुआवजा किसी भी तरह से अनुचित था। उनका विचार था कि क्षति के पूर्व-आकलन पर पक्षों द्वारा विधिवत सहमति व्यक्त की गई थी और दावेदार द्वारा यह स्थापित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया गया था कि निर्धारित शर्त दंड के रूप में थी या निर्धारित मुआवजा किसी भी तरह से अनुचित था। विद्वान मध्यस्थ ने निष्कर्ष निकाला कि उसके पास दुकानों की आपूर्ति में देरी के कारण पूर्व-अनुमानित क्षति को निर्धारित करने वाले समझौते की साफ़ और स्पष्ट शर्तों पर भरोसा न करने का कोई कारण नहीं था। इस संदर्भ में विद्वान मध्यस्थ ने माना कि ***ऑयल एंड नेचुरल गैस कॉर्पोरेशन*** (पूर्वोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा तथ्यों और कानून के आधार पर मामले को पूरी तरह से कवर किया गया था। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता का उक्त राशि की वसूली के लिए 31,70,538.48 रुपये का दावा, जिसे प्रत्यर्थी द्वारा कथित रूप से रोक लिया गया था, क्योंकि परिसमापन क्षतिपूर्तियों को खारिज कर दिया गया था।

9. मामले के इस पहलू पर विचार करते हुए आक्षेपित अधिनिर्णय में, मैं श्री खुराना द्वारा उठाए गए तर्कों को स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। अधिनिर्णय, इस पहलू पर भी, आगे कोई हस्तक्षेप नहीं करता है। श्री खुराना ने चार निर्णयों का उल्लेख किया है, जिनमें से तीन उच्चतम न्यायालय द्वारा तथा एक इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा (हरियाणा

दूरसंचार) मामले में दिया गया था। इनमें से अंतिम निर्णय पर आगे किसी चर्चा की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस विषय पर कानून उच्चतम न्यायालय द्वारा ***फतेह चंद*** (*पूर्वोक्त*), ***मौला बक्श*** (*पूर्वोक्त*) और ***ओ.एन.जी.सी.*** (*पूर्वोक्त*) के मामलों में तीन निर्णयों में घोषित किया जा चुका है। इस मुद्दे पर पहला निर्णय संविधान पीठ द्वारा लिया गया था। ***फतेह चंद*** *(पूर्वोक्त)* के मामले में, संविधान पीठ ने स्पष्टता के साथ उल्लेख किया कि इंग्लिश कॉमन लॉ जो परिसमापन किए गए क्षति के लिए भुगतान प्रदान करने वाली शर्त और दंड की प्रकृति में एक शर्त से संबंधित मामलों के बीच अंतर लाता है, को भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 74 को लागू करके समाप्त करने की मांग की गई थी। यह भी नोट किया गया कि सामान्य कानून में, आपसी समझौते द्वारा क्षति के वास्तविक पूर्व-अनुमान को परिसमापन क्षति के नामकरण की शर्त के रूप में माना जाता था और यह पक्षों के बीच बाध्यकारी था। दूसरी ओर, टेर्रेरिम के तहत संविदा में किया गया प्रावधान एक दंड था और न्यायालय ने इसे लागू करने से इनकार कर दिया तथा केवल पीड़ित पक्ष को उचित मुआवजा अधिनिर्णित किया। भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 74 के आधार पर, भारतीय विधानमंडल ने इंग्लिश कॉमन लॉ के तहत नियमों और अनुमानों के जाल को काटने की कोशिश की है, उल्लंघन के मामले में भुगतान की जाने वाली राशि और दंड के रूप में शर्तों को नामित करते हुए सभी शर्तों पर लागू एक समान सिद्धांत को लागू किया है । भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 74 इस प्रकार है: -

"74. संविदा भंग के लिए मुआवजा जहां जुर्माना संविदा अनुबंधित किया जाता है-

जब किसी संविदा को भंग कर दिया गया हो, यदि संविदा में ऐसे भंग के मामले में भुगतान की जाने वाली राशि के रूप में कोई राशि नामित की गई है, या यदि संविदा में दंड के रूप में कोई अन्य शर्त है, तो भंग की शिकायत करने वाला पक्ष, चाहे यह साबित हो जाए कि उससे वास्तविक क्षति या हानि हुई है या नहीं, उस पक्ष से, जिसने संविदा भंग किया है, उचित मुआवजा प्राप्त करने का हकदार है, जो नामित राशि से अधिक नहीं होगा या, जैसा भी मामला हो, निर्धारित दंड से अधिक नहीं होगा।

फतेह चंद *(पूर्वोक्त)* में दिए गए निर्णय से यह स्पष्ट हो गया कि सभी शर्तों पर एक समान सिद्धांत लागू थे, चाहे वे शर्तें उल्लंघन के मामले में भुगतान की जाने वाली राशि के नाम के रूप में या फिर दंड के रूप में लागु हुए थे । ***फतेह चंद*** *(पूर्वोक्त)* के मामले के तथ्य दंड के रूप में की गई शर्त से संबंधित थे और उच्चतम न्यायालय ने माना कि ऐसे मामले में उल्लंघन की शिकायत करने वाला पक्ष उचित मुआवजे का हकदार होगा जो निर्धारित दंड से अधिक नहीं होगा, भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 74 के प्रावधानों पर विचार करते हुए, ***फतेह चंद*** (*पूर्वोक्त*) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की कि यद्यपि "वास्तविक हानि या क्षति" के प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, फिर भी, मुआवजे का दावा करने से पहले कानूनी क्षति अवश्य होनी चाहिए। न्यायालय ने आगे यह स्पष्ट किया कि सभी मामलों में, न्यायालय केवल उचित मुआवज़ा प्रदान करेगा जो नामित राशि या निर्धारित जुर्माने से अधिक नहीं होगा।

10. उचित मुआवजे से क्या तात्पर्य था, इस पर उच्चतम न्यायालय द्वारा ***मौला बक्स*** *(पूर्वोक्त)* के मामले में कुछ हद तक विस्तार से बताया गया था। उच्चतम न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि जहां क्षति का आकलन करना संभव नहीं था और इस प्रकार पीड़ित पक्ष को अधिनिर्णीत मुआवजे पर पहुंचना संभव नहीं था, वहाँ न्यायालय को दो अलग-अलग मानदंडों पर उचित मुआवजे का आकलन करने की आवश्यकता थी। यदि संविदा में नामित राशि एक वास्तविक पूर्व-अनुमान था तो एसे राशि को उचित मुआवजे के प्रमाण के रूप में माना जा सकता था । तथापि, यदि संविदा में उल्लिखित राशि को जुर्माने के रूप में शर्त माना जाता है, तो उस राशि को उचित मुआवजे के उपाय के रूप में लेने की आवश्यकता नहीं है और न्यायालय को संविदा में उल्लिखित राशि की अधिकतम सीमा के अधीन ऐसे उपाय पर पहुंचने के लिए अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करना होगा। जहाँ न्यायालय के लिए धन के संदर्भ में क्षति का आकलन करना संभव था, वहाँ मुआवजे का दावा करने वाले पक्ष को उसे हुए क्षति को साबित करने की आवश्यकता थी। इसलिए, ***मौला बक्स*** *(पूर्वोक्त)* के बाद स्थिति यह है कि जहां किसी संविदा में नामित राशि को एक वास्तविक पूर्व-अनुमान माना जाना है, तो वह राशि उचित मुआवजे का एक उपाय होगा और न्यायालय वास्तविक क्षति या क्षति के प्रमाण की आवश्यकता के बिना इसे अधिनिर्णीत कर सकता है। तथापि जहाँ यह खंड जुर्माने के रूप में है, वहाँ यदि धन के संदर्भ में क्षति का आकलन करना संभव है, तो मुआवजे

का दावा करने वाले पक्ष को उसे हुए क्षति को साबित करना होगा। हालांकि, यदि धन के संदर्भ में क्षति का आकलन करना संभव नहीं है, तो न्यायालय जुर्माने के रूप में निर्धारित राशि से अधिक उचित मुआवजा अधिनिर्णीत कर सकता है।

11. मेरे विचार में ***ओ.एन.जी.सी*** *(पूर्वोक्त) के मामले* में उच्चतम न्यायालय का निर्णय केवल वही दोहराता है जो ***फतेह चंद*** *(पूर्वोक्त)* और ***मौला बक्स*** *(पूर्वोक्त)* के मामले में पहले ही हो चुका है। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि उच्चतम न्यायालय ने ***ओ.एन.जी.सी*** *(पूर्वोक्त)* के मामले में निष्कर्ष निकाला कि एक वास्तविक पूर्व-अनुमान के मामले में (जहाँ पक्षों को पता था कि किसी विशेष क्षति के परिणामस्वरूप होने की संभावना है), हानि या क्षति को साबित करने की कोई आवश्यकता नहीं थी और निर्धारित राशि न्यायालय द्वारा तब तक अधिनिर्णीत की जा सकती थी जब तक कि दूसरे पक्ष द्वारा यह प्रदर्शित नहीं किया गया था कि भंग के कारण कोई क्षति होने की संभावना नहीं थी। यह कुछ और नहीं बल्कि ***फतेह चंद*** *(पूर्वोक्त)* के मामले में कही गई बात है कि, हालांकि वास्तविक हानि या क्षति का साक्ष्य देने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन क्षतिपूर्ति का दावा करने से पहले कानूनी क्षति अवश्य होनी चाहिए। ***ओ.एन.जी.सी.*** *(पूर्वोक्त)* के मामले में, आगे यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि खंड में शर्त जुर्माने के रूप में थी तो पीड़ित पक्ष उचित मुआवजे का हकदार होगा जो क्षति के प्रमाण पर नामित राशि से अधिक नहीं होगा।

जैसा कि ओ.एन.जी.सी. (पूर्वोक्त) के मामले में निर्णय के पैराग्राफ 65 में उच्चतम न्यायालय ने पाया है, भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 74 का जोर उचित मुआवजे पर है। वास्तविक पूर्व-अनुमान के मामले में, नामित राशि उचित मुआवजा होगी, जबकि, किसी खंड के मामले में, जो जुर्माने के रूप में है, न्यायालय को खंड में नामित राशि से अधिक नहीं उचित मुआवजा निर्धारित करना होगा। महत्वपूर्ण रूप से, यह ***ओ.एन.जी.सी.*** *(पूर्वोक्त)* के मामले में भी माना गया था कि यह साबित करने का भार दूसरे पक्ष (पीड़ित पक्ष के अलावा) पर था कि कथित उल्लंघन के कारण कोई क्षति होने की संभावना नहीं थी।

12. वर्तमान मामले में, विद्वान मध्यस्थ ने खंड 21.1 की व्याख्या उस क्षति का वास्तविक पूर्व-अनुमान माना है जो देरी से आपूर्ति के कारण होने की संभावना थी। उन्होंने यह भी माना कि उक्त खंड में प्रदान किया गया मुआवजा अनुचित नहीं था और यह की जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, दावेदार द्वारा यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया गया कि निर्धारित शर्त जुर्माने के रूप में थी। दावेदार मध्यस्थ या इस न्यायालय के समक्ष यह प्रदर्शित करने में भी असमर्थ था कि संविदात्मक माल की आपूर्ति में देरी के कारण प्रत्यर्थी को कोई कानूनी क्षति नहीं हुई थी या हुई होगी या विलंबित आपूर्ति के कारण कोई क्षति होने की संभावना नहीं थी। यह भी ध्यान देने योग्य है कि ***मैकडरमॉट इंटरनेशनल इन्क. बनाम बर्न स्टैंडर्ड कंपनी लिमिटेड एवं अन्य:***

(2006) 11 एससीसी 181 में, उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की कि "*किसी संविदा की व्याख्या मध्यस्थ द्वारा निर्धारित करने का मामला है, भले ही यह कानून के प्रश्न को निर्धारित करने को जन्म देता हो*" (देखें ***<u>प्योर हीलियम इंडिया (पी) लिमिटेड बनाम ओएनजीसी:</u> (2003) 8 एससीसी 593*** और ***<u>डीडी शर्मा बनाम भारत संघ:</u> (2004) 5 एससीसी 325।)*** इन परिस्थितियों में, अधिनिर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

पूर्वगामी कारणों से याचिका को खारिज कर दिया गया है। कोई लागत नहीं।

बदर दुर्रेज़ अहमद
(न्यायाधीश)

02 जुलाई, 2008
जे.

<u>(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)</u>

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*